# ऋग्वेद-संहिता, प्रथमाष्टक के प्रथम अध्याय की छन्दोमीमाँसा

शिवनारायण शास्त्री

इस निबन्ध में ऋग्वेदसंहिता के प्रथम अष्टक के अष्टाक्षर गायत्री में निबद्ध १७ और अनुष्टुप छन्द में निबद्ध २ सूक्तों के कुल १९४ मन्त्रों की समीक्षा अक्षरपरिणाह की दृष्टि से की गई है। इस के अतिरिक्त वैश्वामित्र मधुच्छन्दस् के एकमात्र और सूक्त (९.१) के दस मन्त्रों की मीमांसा भी इससे उनका अध्ययन पूरा हो जाने की दृष्टि से की गई है।

वाणी का लय में बहना छन्द कहाता है।[1] वैदिक छन्द मु यतः सात हैं : १ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुप्, ४ बृहती, ५ पङ्क्ति, ६ त्रिष्टुप् और ७ जगती।[2] इन सात छन्दोजातियों में रचित मन्त्र या श्लोक[3] की समुच्चित अक्षरसङ् या अष्टाक्षर पाद से ले कर द्वादशाक्षर पादपर्यन्त २४ से प्रार भ करके चार-चार अक्षरों की वृद्धि से[4] क्रमशः १ गायत्री (२४ अक्षर), २ उष्णिक् (२८ अक्षर), ३ अनुष्टुप् (३२ अक्षर), ४ बृहती (३६ अक्षर), ५ पङ्क्ति (४० अक्षर), ६ त्रिष्टुप् (४४ अक्षर), और ७ जगती में निबद्ध मन्त्र या श्लोक की अक्षरसङ् या ४८ होती है।

यह अक्षरपरिमाण ऋग्वेद का सामान्य मानक परिमाण है। इन्हें ऋषिच्छन्द या आर्ष छन्द कहा जाता है। इनमें एकेक अक्षर अधिक होने से उस छन्दोजाति को 'दैवी' कहा जाता है और न्यून होने से 'आसुरी' कहा जाता है। ऋग्वेदीय मन्त्र और लौकिक श्लोक प्रायः ऋषिच्छन्दों में रचित हैं।[5]

---

१ वाग् वै सरिरं छन्दः। शतपथब्राह्मण ८.५.२.४

२ गायत्र्युणिगनुष्टुप् च, बृहती च प्रजापतेः। पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगती च, सप्तच्छन्दांसि तानि ह।। ऋ०प्रा०१६.१

३ ऋषिदृष्ट रचना मन्त्र कहलाती है और छन्दोबद्ध लौकिक रचना श्लोक।

४ चतुरुत्तरा वै वाचो रोहाः। जैमिनीय ब्राह्मण २.३.६७, अष्टाक्षरप्रभृतीनि चतुर्भूयः परं परम्।। ऋ० प्रा० १६.२

५ दैवान्यपि च सप्तैव, सप्त चैवासुराण्यपि।। ऋ० प्रा० १६.२
एकोत्तराणि देवानां, तान्येवैकाक्षरादधि। एकावमान्यसुराणां, ततः पञ्चदशाक्षरात्।। ३
तानि त्रीणि समाग य, सनामानि सनाम तत्। एकं ावत्यृषिच्छन्दस्, तथा गच्छति स पदम्।। ४
एवं त्रिप्रकृतीन्याहुर्, युक्तानि चतुरुत्तरम्। ऋषिच्छन्दांसि, तैः प्रायो, मन्त्रः श्लोकश्च वर्तते।। ५

१ गायत्री और २ उष्णिक् प्राय: त्रिपदा होती हैँ। १ गायत्री ८×३=२४ और २ उष्णिक् ८×२+१२=२८ अक्षर। पर वे चतुष्पदा भी मिलती हैँ। १ गायत्री ६×४= २४ अक्षर और ७ ×४ = २८ अक्षर।[1]

शौनक ने गायत्री के विषय मैँ दो बातैँ और आवश्यक बताई हैँ : अष्टाक्षर पाद का षष्ठ अक्षर गुरु और सप्तम अक्षर लघु होना चाहिये। कात्यायन ने ६ त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर पाद) के विषय मैँ लघूपोत्तमता को आवश्यक नहीँ माना लगता है। उन्होँने अक्षरसं या पर ही बल दिया है।[2]

ऋग्वेद संहिता के १.१ सूक्त की नौ ऋचाओँ मैँ से १, ३, ४, ५, ७ ऋचाएँ ८×३= २४ अक्षरोँ से युक्त हैँ और इनका षष्ठ अक्षर गुरु, सप्तम अक्षर लघु तो है ही, पाँचवाँ अक्षर लघु है। अर्थात् ये जविपुला गायत्री मैँ हैँ।

दूसरी ऋचा का द्वितीय पाद 'रीळियो नूतनैरुत', ६.२ पाद 'यदङ्ग दाशुषें तुव', ८.३ पाद 'वर्धमानं सुवे दमें।।' और ९.३ पाद 'सचस्वा नः सुवस्तयें।।' जात्य यण् के व्यवाय से, अष्टाक्षर भी होँगे, गुरु-लघु भी यथास्थान स्थित होँगे और २.२ पाद लघूपोत्तम भी होगा।

८.१ पाद एकाक्षरन्यूनता से निचृद् गायत्री मैँ है और सप्तम अक्षर गुरु भी है। इस स्थिति मैँ पादपूर्ति के लिये शौनक, कात्यायन और पिङ्गल नाग, सब ने यण् वर्णोँ के संयोग का सदृश स्वरवर्णोँ के व्यवधान (व्यवाय) से या व्यूह से (विच्छेद) का विधान किया है।[3] इस व्यवस्था मैँ वर्णधर्म स्वरोँ

---

१ गायत्री, सा चतुर्विंशत्यक्षरा।
अष्टाक्षरास् त्रयः पादाश्, चत्वारो वा षडक्षराः। ऋ०प्रा० १६.९
अष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक्, सा पादैर्वर्तते त्रिभिः।
पूर्वावष्टाक्षरौ पादौ, तृतीयो द्वादशाक्षर।। ऋ०प्रा० १६.२०
सप्ताक्षरैश्चतुर्भिर्द्वे, 'नदं', 'मंसीमहि'ति च।। २२
द्वितीयमुष्णिक् त्रिपदा। अन्त्यो द्वादशकः। चतुःसप्तकोष्णिगेव।। ऋग्वेदानुक्रमणी ५.१,८

२ एकादशिद्वादशिनोर्लघावष्टममक्षरम्। ऋ०प्रा० ८.२१
दशमं चैतयोरेवं, षष्ठं चाष्टाक्षरेऽक्षरम्।। २२
वर्षिष्ठाणिष्ठयोरेषां, लघूपोत्तममक्षरम्। गुर्वेवेतयोर्ऋक्षु, तद् वृत्तं छन्दसां प्राहुः।। ऋ०प्रा० १७.२२

३ व्यूहेदेकाक्षरीभावान्, पादेषूनेषु स पदे।
क्षैप्रवर्णांश्च संयोगान्, व्यवेयात् सदृशैः स्वरैः।। ऋ०प्रा० १७.१४
व्यूहैः स पत् समीक्ष्योने, क्षैप्रवर्णैकभाविनाम्।। ऋ०प्रा० ८.२२

(स बद्ध स्वर के अतिरिक्त आगे-पीछे के उदात्तादि) को यथायोग्य रूप मैं लाकर संहितापाठ के अनुकूल बनाना भी आवश्यक है। इस व्यवस्था से ८.१ पाद का शुद्ध, पूर्ण पाठ यौं होगा: 'राजन्तमध्वराणां'। ९.२ पाद १-२ पादौं की पूर्वरूप एकादेश सन्धि के कारण एकाक्षर से न्यून, निचृद् है। इसकी पूर्ति एकादेश का व्यूह करके 'सूनवे, अग्नें, सूपायनो भव।' पाठ से होगी।। १)

दूसरे सूक्त के ४-६ मन्त्र तो पूर्वोक्त मानकौं पर खरे हैँ। पर १.२ पाद 'वायवायाहि दर्शत, इमे सोमा अरङ्कृताः।', पादसन्ध्य गुणसन्धि को तोड़ कर ही निर्दोष होगा। २.२ पाद 'जरन्ते, तुवामच्छा जरितारः।' जात्य यण्संयाग के व्यवाय से और ६.३ पाद 'मक्षुवित्था धिया नरा।।' यण्सन्धि के व्यवाय से अष्टाक्षर और जविपुल तो हौंगे ही, क्षैप्रस्वरित के भङ्ग के कारण क प का उच्चारण भी नहीं होगा। २.१, ७.३, ८.३ और ९.१ और ३ पादौं की लघुगुरुव्यवस्था भी जविपुला की न होकर २.१ मैं रविपुला (ऽ ।ऽ), ७.३ मैं मविपुला (ऽऽऽ), ८.३ मैं यविपुला (।ऽऽ), ९.१ और ३ पादौं मैं भविपुला (ऽ।।) गायत्री की है।। २।।

तीसरे सूक्त के १२ मन्त्रौं मैं से सात (१, ३, ५-७, १० और १२) मन्त्र तो सुलक्षण हैँ। २.३ पाद 'धिष्णिया वनतं गिरः।।', ४.२ पाद 'सुता इमे तुवायवः।' जात्य यण्व्यवाय से पूर्ण और जविपुल हौंगे। ४.१ पाद रविपुल (ऽ।ऽ), ३ पाद सविपुल (।।ऽ), ९.१-२ पाद तविपुल (ऽऽ।), ११.१ पाद रविपुल (ऽ।ऽ) और अष्टाक्षर हैँ। ११.२ पाद निचृद् गायत्री मैं है।। ३।।

चौथा सूक्त मधुच्छन्दस् का गायत्रीनिबद्ध दस ऋचाऔं वाला चौथा सूक्त है। ३.१ पाद यविपुल निचृद् गायत्र है। इस मैं सप्तम अक्षर गुरु है। २ पाद भी निचृद् गायत्र है। पर व्यूह-व्यवाय की प्रक्रिया से 'विदियाम सुमतीनाम्।' पाठ अष्टाक्षर तो हो जाता है, पर सविपुल (।।ऽ) हो जाता है। ५.१-२ पाद (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ, ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ) अक्षर-विन्यास मैं भी जविपुल और अष्टाक्षर होने से 'गायत्री' के लक्षण पर खरे उतरते हैँ। ८.२ पाद भविपुल (ऽ।।) गायत्र है। १०.१ पाद 'यो रायो अवनिर्महान्' पाठ से, पूर्वरूप सन्धि के व्यूह से, सुलक्षण गायत्र स पन्न होता है।। ४।।

पाँचवें सूक्त की दस ऋचाओं की रचना विश्वामित्र कौशिक के पुत्र मधुच्छन्दस् ने गायत्री में की है। १.१-२ पाद 'आ तुवेता नि षींदत, इन्द्रंमभि प्र गांयत।', व्यवेत और व्यूढ पाठ से सुलक्षण अष्टाक्षर बनेगा। २.१ पाद निचृद् गायत्र है। २ पाद षडक्षर है। पर 'ईशानं वारिंयाणाम्।' पाठ से जात्य यण् के व्यवाय से निचृद बनता है। ३.२ पाद की पूर्ति 'स राये स पुरंन्धियाम्' पाठ से, ५.३ पाद 'सोमांसो दधिंयाशिरः।', यण्सन्धि के व्यवाय से, ६.१ पाद 'तुवं सुतस्यं पीतयें,' पाठ से सुलक्षण गायत्र बनेगा। ७.२ पाद 'आ त्वां विशन्तुवाशवः,' यणसन्धि के व्यवाय से पूर्ण और जविपुला गायत्री में स पन्न होगा। अष्टम मन्त्र के तीनों पाद सप्ताक्षर, निचृद् हैं और इससे यह मन्त्र यथापाठ में पादनिचृद् गायत्री में है। पर, कात्यायन ने इस का उल्लेख नहीं किया है। अपितु 'आदौ गायत्रं प्राग्घैरण्यस्तूपीयात्' (ऋ०१.३१)-ऋ०अ० १२.१४ परिभाषा से यह गायत्री में है। यह स्थिति तीनों पादों में 'तुवां' व्यवाय से 'तुवां स्तोमां अवीवृधन्, तुवामुक्था शंतक्रतो। तुवां वंर्धन्तु नो गिरंः।।' पाठ से ही स भव है। ९.१ पाद भी 'यस्मिन् विश्वांनि पौंसिंया।।', जात्य यण् के व्यवाय से अष्टाक्षर और लघूपोत्तम होगा।

इन व्यवायों के अतिरिक्त इस सूक्त के शेष सभी मन्त्र सर्वाङ्गस पन्न अष्टाक्षर हैं।। ५।।

छठे सूक्त की दस ऋचाओं में से १.१ पाद अष्टाक्षर किन्तु नविपुल है। २.१ षडक्षर पाद 'युञ्जन्तिंयस्य कामिंया', सन्ध्य और जात्य यण् के व्यवाय से तथा ८.२ पाद 'गणैरिन्द्रंस्य कामिंयैः।।', जात्य यण् के व्यवाय से पूर्ण और सुलक्षण जविपुला गायत्री में स पन्न होंगे। १.३ पाद भविपुल अष्टाक्षर है। सूक्त के शेष २६ पाद जविपुला गायत्री में पूर्णक्षर हैं।। ६।।

सातवें सूक्त की दस ऋचाओं में से २.१ पाद 'इन्द्र इद्धरिंयोः सचा', यण्व्यवाय से न केवल पूर्ण और जविपुल होता है, अपितु ऽ।ऽ।, ।ऽ ।ऽ व्यवस्थित लय में स पन्न होता है। ३.३ पाद भी ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ विशेष लय से संपन्न है। ४.१ पाद 'इन्द्र, वाजेंषु नो अव', व्यवाय से जविपुल और अष्टाक्षर है। ८.२ पाद 'कृष्टीरिंयर्तियोजंसा।' यण्व्यवाय से श्रेष्ठ गायत्र बनता है। ९

मन्त्र के तीनों पादों में एकेक अक्षर कम हैं। अत: यह मन्त्र पादनिचृद् गायत्री में है। १ पाद का ५वाँ अक्षर लघु है और छठा गुरु। २ पाद में अन्तिम त्रिक भगण (ऽ।।) है। १०.२ पाद 'हवा॑महे जने॑भि॑य:।' जात्य यण् के व्यवाय से सुलक्षण, जविपुल पूर्ण और ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ अक्षरव्यवस्था से सुन्दर लय से स पन्न हो जाता है। शेष सब पाद सुलक्षण जविपुला गायत्री में हैं।।७।।

आठवें सूक्त में दस ऋचाएँ हैं। १.१ पाद की पूर्ति और सुलक्षणता 'आ इ॑न्द्र, सानसिं रयिं', गुणसन्धि के व्यूह से होगी। २.३ षडक्षर पाद 'तुवोता॑सो नियर्वता', जात्य और सन्ध्य यण् के व्यवायों से सुलक्षण गायत्र बनेगा। ६.२ पाद नविपुल अष्टाक्षर है। ८.१ पाद 'एवा हियस्य सूनृता॑,' क्षैप्र सन्ध्य यण् के व्यवाय से, १०.१ पाद 'एवा हियस्य कामि॑या', एक क्षैप्र सन्ध्य और एक जात्य यण् के संयोग के व्यवाय से और दूसरा पाद 'स्तोम॑ उक्थं च शंसि॑या।' एक जात्य यण् के व्यवाय से सुलक्षण होंगे।

९.१.१ पाद 'इन्द्रेहि मत्सियन्ध॑सो', ३.३ पाद 'सचैषु सव॑नेषुवा', ५.२ पाद 'राध॑ इन्द्र वरे॑णियम्।', ६.२ पाद 'अस्मान्त्सु तत्र॑ चोदय, इन्द्र॑ राये रभ॑स्वत:।' पाद गुणव्यूढ और ९.३ पाद 'विश्वायु॑र्धेहियक्षि॑तम्।।' व्यवेत पाठ से सुलक्षण गायत्र बनेंगे। अर्थाद् ये सब पाद संहितापाठ में अनार्ष सन्धियों से विकृत हुए हैं और इन के व्यवाय अथवा व्यूह से संहिता निर्दोष और आर्ष लय में आएगी।

९.९.१ पाद अष्टाक्षर तो है। पर नविपुलता के कारण लय एकदम बदल गई है। मेधातिथि को लय की दृष्टि से लघु-गुरु-लघु-गुरु अक्षरविन्यास बहुत पसन्द है। यह इन सूक्तों के गणक्रम से विदित होता है।

१०.१ पाद 'सुतेसु॑ते नियो॑कसे', सन्ध्ययण्व्यवाय से पूर्ण और जविपुल होता है।

नवम सूक्त के अन्य सभी पाद जविपुल, पूर्णाक्षर और लघु-गुरु-लघु की नृत्यत्पदा जविपुल शैली में सुन्दर लय से प्रस्तुत किये गए हैं।।९।।

प्रथम मण्डल के आर भ में इन नौ सूक्तों के अतिरिक्त कौशिक विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र मधुच्छन्दस् का गायत्री छन्द में और इसी नृत्यत्पदा

शैली में निबद्ध एक सूक्त और है : नवम मण्डल के दस ऋचाओं वाले प्रथम सूक्त की रचना भी मधुच्छन्दस् ने ही की है। इस का छान्दस विवरण इस प्रकार है :

नवम मण्डल के प्रथम सूक्त का ३.३ पाद यथापाठ में निचृद् गायत्र और यविपुल है। इसका पञ्चम अक्षर लघु, छठा गुरु और सातवाँ गुरु है। ४.१ पाद 'अभियर्ष महानां', सन्ध्य यण् का व्यवाय करके भी यविपुल निचृद् गायत्र रहता है। पञ्चम अक्षर लघु, छठा गुरु और सातवाँ भी गुरु है। ५.३ पाद 'तुवामच्छा चरामसि', ३ पाद 'इन्द्रो, तुवे न आशसः।।', ७.३ पाद 'स्वसारः पारिये दिवि।।', ८.१ पाद 'तमीं हिनुवन्त्यग्रुवो', अथवा 'तमीं हिन्वन्तियग्रुवो', ९.१ पाद 'अभी३ममघ्नियां उत', १०.१ पाद 'अस्येन्दिन्द्रो मदेषुवा', व्यवेत पाठ से जविपुलअष्टाक्षरस पन्न होते हैं। शेष सभी २२ पाद इसी प्रसन्न और नृत्यत्पदा लघु-गुरु क्रम की शैली में स्वाभाविकता को लिये हुए जगणविपुला ८×३=२४ अक्षर वाली गायत्री जाति में निबद्ध हैं।। ९.१.२।।

प्रथम मण्डल में मधुच्छन्दस का १२ ऋचाओं वाला एक, दसवाँ सूक्त अनुष्टुप् (८×४=३२ अक्षरों) में भी है। इस दसवें सूक्त का १.२ पाद प्रथम पाद से पूर्वरूप सन्धि के व्यूह से और यण्सन्धि के व्यवाय से 'गायत्रिणो, अर्चन्तियर्कमर्किणः।' पाठ से और २.२ पाद 'भूरियस्पष्ट कर्तुवम्।', क्षैप्र और जात्य यण्संयोगों के व्यूह और व्यवाय से अष्टाक्षर बनेगा। ३.२ पाद 'कक्षियप्रा' पाठ से निर्दोष होगा। ४.२ पाद प्रथम पाद से दीर्घ सन्धि के व्यूह और यणसन्धि के व्यवाय से 'स्वर, अभि गृणीहिया रुव।' एवं ४ पाद 'सचा, इन्द्र', पादसन्ध्य पूर्वरूप के व्यवाय से निर्दोष होंगे। ५ मन्त्र को १ पाद 'शंसियं' तथा ४ पाद 'सखियेषु' पाठ से और ६.२ पाद 'सुवीरिये' पाठ से। ८.३ पाद 'सुवर्तनी' पाठ से जात्य यण्संयोग के व्यवाय से पूर्ण होंगे।। १०।।

ऋग्वेदसंहिता के दूसरे ऋषि जेतृ माधुच्छन्दस् का अनुष्टुप् में निबद्ध आठ ही ऋचाओं वाला एक ही सूक्त है। प्रथम अध्याय में इस ग्यारहवें सूक्त का १.३ पाद स्पष्टतः निचृत् है। २.३ पाद 'तुवामभि', जात्य यण्संयोग के व्यवाय से और ३.२ पाद 'दस्यन्तियूतयः', यण्सन्धि के व्यवाय से, ५.१ पाद 'तुवं' पाठ से, ३ पाद 'तुवां' और ७.२ पाद 'तुवं' पाठ से जात्य यण् के

व्यवायोँ से, पूर्ण होँगे। ७.३ पाद 'मोजंसा, अभि' पादसन्ध्य दीर्घ के छेद से पूर्ण होगा।। ११।।

इस अध्ययन के निष्कर्ष के रूप मेँ हम कह सकते हैँ कि –

(१) गायत्री मेँ अष्टाक्षर तीन पाद आवश्यक हैँ।

(२) मधुच्छन्दस् ने गायत्री और अनुष्टुप् छन्द मेँ निबद्ध मन्त्रोँ मेँ अष्टाक्षर पादोँ की ही रचना की थी। किन्तु कालप्रवाह मेँ उच्चारण मेँ त्वरा दोष के प्रभाव से कुछ शब्दोँ मेँ स्वर+स्वर अपना स्वाभाविक पृथग् रूप नहीँ रख पाए। विशेषकर मात्रिक इ–उ वर्णोँ को बोलने की ज़ल्दी मेँ, क्षिप्रता मेँ, अर्धमात्रिक स्वस्थानिक अर्धस्वर य्–व् के रूप मेँ सन्धिज संयोग शब्द का जात्य, स्वाभाविक, अङ्ग समझा जाने लगा। पदान्तीय और पदादिस्थ इ – उ + स्वर के उच्चारण मेँ भी इसी क्षिप्रता के कारण क्षैप्र वर्णोँ, य्, व् का प्रयोग भाषिक प्रवाह मेँ, व्यवहार मेँ, आ गया। कालान्तर मेँ यह स्थिति अन्य सवर्ण और असवर्ण स्वरोँ के युगपत् प्रयोग मेँ दीर्घ, गुण, वृद्धि, पूर्वरूप और पररूप एकादेश सन्धिज वर्णों के रूप मेँ व्यवहार मेँ पूर्वापेक्षया अधिक प्रयुक्त होने लगी।

सङ्क्रमण के काल मेँ तो ऋग्वेदसंहिता इस नए उच्चारण से, भाषिक परिवर्तन से मुक्त रही। कालान्तर मेँ श्रुतिपर परा मेँ नूतन उच्चारण संहिता के कलेवर मेँ छन्द की कीमत पर भी प्रविष्ट हो गए। जात्य यण्संयोग वाले पद तो जहाँ जितनी बार प्रयुक्त हुए हैँ, वहाँ उतनी बार चाहे जो छन्द रहा हो, वह उतने अक्षरोँ से प्रायेण भग्न हुआ है। अन्य सन्धिज क्षैप्र या एकादेश भी जहाँ कहीँ, जितनी मात्रा मेँ मन्त्रशरीर मेँ प्रविष्ट हुए हैँ, वहाँ उतनी ही बार, उतने ही अक्षरोँ से वेदगिरा के पादभङ्ग हुए हैँ। अनुक्रमणियोँ मेँ संक्रमणकाल की स्थिति का उल्लेख किया प्रतीत होता है। अनुक्रमणियोँ मेँ कुछ मन्त्रोँ के छन्द का विवरण तो सँहिता के मूल आर्ष पाठ का ही विवरण प्रस्तुत करता है। आज उपलब्ध पाठ उस पर खरा नहीँ उतरता। कुछ मन्त्रोँ का छान्दस विवरण उपलब्ध सन्धियुक्त पाठ को पुष्ट करता है। और तो और, पाणिनि द्वारा पादपूर्त्यर्थ विहित 'सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्' (अष्टाध्यायी) व्यवस्था भी

में बदलने के कारण न अष्टाक्षर रहा, न जविपुल। इसे 'बर्हिः सीदन्तुवस्रिधः ।।' करने से पाद सुलक्षण (जविपुल), पूर्ण और आर्ष हो जाएगा।। १३ ।।

१४वें सूक्त की १२ ऋचाओं के ३६ पादों में से ३० पाद सुव्यवस्थित लघु-गुरुक्रमयुक्त, पूर्णाक्षर, जविपुला गायत्री में हैं। दो, ८.१ और ११.१, पाद जात्य यण्संयोग के कारण खण्डित, निचृद हो गए हैं। दो ७.२ और ११.२ पाद पादसन्ध्य पूर्वरूप के कारण निचृद्, एक १०.१ पाद जात्य और सन्ध्य यण्संयोगों के कारण विराड् गायत्र, एक १२.१ पाद यण्सन्धि के कारण निचृद् हो गया है। ये सब निम्न प्रकार से व्यूह और व्यवाय कर के आर्ष रूप में आएँगे :

१. तान् यजत्राँ ऋतावृधो, अग्ने पत्नीवतस्कृधि।। (१४.७.१-२)।
२. ये यजत्रा य ईळियास् (८.१)।
३. विश्वेभिः सोमियं मधुवग्न इन्द्रेण वायुना। (१०.१)
४-५. तुवं होता मनुर्हितो, अग्ने, यज्ञेषु सीदसि। (११.१-२)
६. युक्ष्वा हियरुषी रथे (१२.१)।। १४।।

१५वें सूक्त में १.१, २.१, ३.२, ४.३ (कुल चार) पाद भुरिग् गायत्र तथा नविपुल हैं। १.२ पाद 'ऋतुना, ऽऽ तुवा (अथवा 'ऋतुना, आ त्वा') पाठ से विशन्तुविन्दवः।' ३.३ पाद 'तुवं हि रत्नधा असि'।। पाठ से सुलक्षण गायत्र बनते हैं। १०.१ पाद नविपुल है। ११.२ पाद निचृद् है। पर 'दीदियग्नी शुचिव्रता।' पाठ से, सन्ध्य यण् के व्यवाय से यह पूर्णतः सुलक्षण हो जाता है। १२.१ पाद ा 'सन्तिय',[1] जात्य यण् के व्यवाय से पूर्ण और सुलक्षण होगा।

शेष पाद सुलक्षण जविपुल गायत्री में हैं।। १५ ।।

---

१ १२.१-२ पादों में ऋषि ने ही गुणसन्धि नहीं की है। यह 'ऋत्यकः' (अष्टाध्यायी) से भी विवृत्ति का विषय रहा हो सकता है।

**क्रमशः................**

2149-50, सैक्टर-13, हुडा, भिवानी